INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 21-23
Received: 28-05-2020
Accepted: 30-06-2020

कल्पना कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
कल्पना कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद और बिहार

कल्पना कुमारी

सारांश
बिहार में 19वीं शताब्दी के आरंभिक दशक में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का उद्भव तथा विकास हुआ। यद्यपि बिहार के राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास उस राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की प्रतिगामी चेतना और जन–आधार का इतिहास है। जिसकी शुरूआत बिहार के उदीयमान बुर्जुआ और व्यवसायी वर्ग के थोड़े से लोगों ने अपने उन थोड़े से सीमित उद्देश्यों को, जिनकों प्राप्त करने में उनके स्वार्थ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों के स्वार्थों से टकराते थे, प्राप्त करने हेतु ध्यान में रखकर शुरू किया था और इतिहास की प्रक्रिया के साथ वह अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लिया। उदीयमान भारतीय बुर्जुआ वर्ग की जरूरत थी, उसकी मांगों के समर्थन में राष्ट्रीय गोलबंदी और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की जरूरत थी– इस राष्ट्रीय गोलबंदी के लिए मौजूद आधारों को तहस–नहस करके रखना, जो परस्पर विरोधी राजनीतिक लक्ष्यों का टकराव बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के शुरूआती दौर में देखा जा सकता है।

मूल शब्द: क्रांतिकारी राष्ट्रवाद, उदीयमान भारतीय और बिहार

प्रस्तावना
राष्ट्रवाद, जो लहर भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ भारत के हितों के टकराव के फलस्वरूप उठी थी, वह रूकी नहीं। भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने की साम्राज्यवादी साजिशें ठीक उसी तरह की जा रही थी जिस तरह अमेरिका की क्रांति की पूर्व संध्या तक अंग्रेज लोग अमेरिकी जनता के बारे में विश्लेषण करते थे और इस बात के प्रमाण दिया करते थे कि अमेरिकी जनता की एकजुटता असंभव है। लेकी ने उल्लेख किया है कि अंग्रेजों के वंशजों के साथ भारी संख्या में डच, जर्मन, फ्रांसिसी, स्वीडिस, स्काच और आयरिश लोगों ने उपनिवेशों का एक ऐसा पंचमेल चरित्र बनाया और उन्होंने सरकार, धार्मिक विश्वास, व्यापारिक हित और सामाजिक रूप की इतनी किस्मों की रचना की कि क्रांति से पहले तमाम लोगों को इस बात में संदेह था कि उनके बीच कोई एकता हो सकती है। [1]

भारत के राष्ट्रवादी आंदोलनों ने जब ब्रिटिश सिद्धांतकारों की इस दलील को कि भारत एक राष्ट्र नहीं, अपितु एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है, को झुठला दिया तब साम्राज्यवाद के अपेक्षाकृत ज्यादा चालाक सिद्धांतकारों ने एक नई दलील का इजाद कर लिया। उनका कहना है कि अगर भारत को एक राष्ट्र के रूप में मानने की मजबूरी है और उसका कहीं अस्तित्व है तब उसे साम्राज्यवाद की गौरवपूर्ण अभिव्यक्ति कहा जाना चाहिए, क्योंकि इसने ही भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात किया और ब्रिटेन के जनतांत्रिक आदर्शों के बीज भारत में डाले। कहा गया कि भारत के लोगों का वह हिस्सा जिसमें राजनीतिक चेतना है – बौद्धिक रूप से हमारी संतान है। उन्होंने उन आदर्शों को आत्मसात कर लिया है। जो हमने उनके सामने रखे और इसके लिए हमें उन्हें श्रेय देना चाहिए। वर्तमान बौद्धिक और राजनीतिक खलबली का अर्थ यह नहीं कि भारतीय जनता हमारी भर्सना कर रही है, बल्कि यह हमारे कार्य के प्रति उनकी सराहना है। [2] इस प्रकार यह प्रमाणित किया जाता था कि भारतीय जनता का साम्राज्यवाद विरोधी अदम्य संघर्ष नहीं बल्कि साम्राज्यवादी शासकों का परोपकारी कृत्य भारतीय जनता की राष्ट्रीय स्वाधीनता का पथ प्रशस्त कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रवाद ऐसी दलीलों को कभी स्वीकार नहीं किया हालांकि शुरूआती दौर के आवेदनकर्ताओं ने जिन्होंने आवेदन–आंदोलन के द्वारा ब्रिटिश शासन के कुछ रियायतों की जो कल्पना की थी उसमें यह भाव निहित था कि साम्राज्यवाद औपनिवेशिक जनता के साथ न्याय करेगा।

1905 और 1909 के दौरान बढ़ते क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आंदोलन के। समानान्तर मजदूर आंदोलनों की लहर भी तीव्र होती गई थी फिर भी अभी तक राष्ट्रीय आंदोलन के नेता मजदूरों का कोई संगठन बनाने की तरफ इस कारण मुखातिब नहीं हो रहे थे कि उनका. वर्ग स्वार्थ राष्ट्रीय पूंजीपतियों के साथ जुड़ा हुआ था और उन्हीं की माँगों को वे राष्ट्रीय माँग बना लिए थे। मजदूरों के असंगठित संगठनों को चलाने वाले प्रायः मानवतावादी थे, जो मजदूरों की मुक्ति के लिए जरूरी वर्ग संघर्ष की संकल्पना से काफी दूर थे। फिर भी मजदूरों की संगठित शक्ति का प्रदर्शन कहीं–न–कहीं हो जाता

था जो महज आर्थिक लाभों के संघर्षों तक ही सीमित रह जाता था। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं और मजदूर संगठनों के मानवतावादी नेताओं ने साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में मजदूरों की संगठित शक्ति के इस्तेमाल की जरूरतों को नहीं महसूस किया। लेकिन नये आधार पर जब आंदोलन विकसित हुए और वे धार्मिक दायरों से निकलकर राजनीतिक स्वरूप ग्रहण करने लगे तो ब्रिटिश सरकार का दमन भी तेज होता गया। मगर राष्ट्रीय आंदोलनों के साथ विडम्बना यह रही कि 1905 के वर्षों से शुरू हुआ मजदूर आंदोलन के पहले तक इसका जनाधार काफी संकुचित था और जब मजदूरों की हिस्सेदारी आंदोलन में बढ़ने लगी। तब ब्रिटिश शासकों की दमनात्मक कार्रवाईयाँ भी बढ़ने लगी। 1907 में सभाओं पर (जिसे ब्रिटिश शासकों ने राजद्रोही सभाओं का नाम दिया था) रोक लगाने वाला कानून, सेडीशश मिटिंग ऐक्ट बनाया गया और 1910 में एक नया और ज्यादा सख्त प्रेस कानून को लाया गया। [3] 1918 के एक कानून के आधार पर उग्रपंथी नेताओं के विरूद्ध बिना मुकदमा चलाए देश निकाल का तरीका अपनाया गया।

1908 तक आंदोलनों का चरित्र असंगठित, किंतु मजदूरों की शिरकत वाला रहा। 1908 में जब तिलक को उनके अखबार में प्रकाशित एक लेख के कारण छः साल की सजा दी गई, तब मजदूरों का सशक्त आंदोलन सरकार की इसी कार्रवाई के खिलाफ शुरू हो गया, और बम्बे के मिल मजदूरों ने छः दिनों तक हड़ताल कर दी। भारत में सर्वहारा वर्ग द्वारा की गई यह पहली राजनीतिक कार्रवाई थी जिसका स्वागत तमाम साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों ने किया। लेनिन ने इसे शुभ राजनीतिक संकेत माना। इसके अलावा अन्य नेताओं को भी सजा दी गई और कुछ नेता देश छोड़कर चले गए। 1906 से 1909 तक का अकेले बंगाल में 550 राजनीतिक मुकदमें अदालतों में लम्बित थे। सभाओं को तोड़ा गया, पंजाब के किसानों के आंदोलनों को निर्ममतापूर्वक दबाया गया और स्कूली बच्चों को भी राष्ट्रगान गाने के कारण गिरफ्तार किया गया।

ब्रिटिश सरकार की इन दमनात्मक कार्रवाईयों का प्रतिरोध कर रहे मजदूर वर्ग को अभी भी राष्ट्रीय आंदोलन के नेता आंदोलन के एक अंग के रूप में स्वीकार नहीं कर सके थे। उनकी नजरें अभी भी ब्रिटिश सरकार से मिलने वाली रियायतों की तरफ लगा था। साम्राज्यवाद ने भी दमन के साथ रियायतों का सिलसिला जारी किया ताकि नरमदली नेताओं को अपने साथ ले सके। 1909 में मार्ले–मिन्टों सुधार को लाया गया, जिसका दायरा काफी संकुचित था। 1892 के इंडिया काउंसिल ऐक्ट के जरिये विधान परिषदों में भारतीय प्रतिनिधि लेने के कार्यक्रम को थोड़ा विस्तार दिया गया। अब केन्द्रीय विधान परिषद् में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों के एक अल्पमत को तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदस्यों के बहुमत को शामिल किया गया। ये परिषद् मात्र सलाहकार की भूमिका में थी और इन्हें किसी तरह का ठोस अधिकार प्राप्त नहीं था।

अब कांग्रेस के नरमदली नेताओं ने इन सुधारों के प्रति अपनी आस्था जला दी और एक बढ़ता हुआ आंदोलन, जो मजदूरों को भागीदारी के कारण पीछे के तमाम आंदोलनों की तुलना में अपेक्षाकृत काफी सशक्त था, प्रायः समाप्त हो गया और आंदोलन पर नरमदली नेताओं का वर्चस्व स्थापित हो गया। एक क्रान्तिकारी आंदोलन का खात्मा चंद रियायतों के लिए समाप्त कर दिया गया। 1910 में जब नये वायसराय ने अपना कार्यभार संभाला तब कांग्रेस ने उनके प्रति पूर्ण आस्था को व्यक्त किया और जब 1911 में बंगाल के विभाजन के कानून को सुधारा गया तब कांग्रेस के नेताओं ने वफादारी से भरा एलान किया और कहा कि ब्रिटिश सम्राट के प्रति हर एक व्यक्ति का हृदय श्रद्धा और आदर से भरा हुआ है, हम ब्रिटिश राजनेताओं के प्रति कृतज्ञ हैं और हमारा विश्वास उनमें फिर से दृढ़ हो गया है। [4]

तिरहुत में क्रांतिकारियों का नेतृत्व करने वाले जोगेंद्र शुक्ल (जो अपने को बिहार का रॉबिन हुड मानते थे) 1924 तक गांधी के अनुयायी रहे थे। यहां तक कि उसके बाद भी वे किशोरी प्रसन्न सिंह के साथ हाजीपुर गांधी आश्रम से एक स्वतंत्र बिहार रेवोलूशनरी पार्टी के गठन की कोशिश करते रहे। उनके भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद से संबंध थे। उन्होंने दावा किया कि बिहार, उत्तर प्रदेश, कलकत्ता और बंबई में डकैती से मिलने वाली रकम का कम–से–कम एक हिस्सा कांग्रेस को दान किया जाता था। हाजीपुर में वे अपने हथियार एक "गांधीवादी कांग्रेसी'' के घर में रखते थे जिसकी उनसे 'सहानुभूति' थी। [5] मनींद्र नारायण राय, जिन पर क्रांतिकारी होने का संदेह था, द्वारा पटना में आयोजित युवक संघ की सभा में कई कांग्रेसियों ने भाग लिया। ढाका के मूल निवासी राय पटना सदाकत आश्रम के पूर्व छात्र थे। वर्ष 1929 के शुरू में, वे पटना टाउन कांग्रेस के सचिव बने और कांग्रेस के पुनर्गठन के काम से उन्होंने राजेंद्र प्रसाद के साथ कई जिलों का दौरा किया। युवक संघ के सदस्यों ने कांग्रेस की गतिविधियों में नियमित रूप से भाग लिया और नागरिक अवज्ञा आंदोलन के दौरान पीछे न हटने की प्रतिज्ञा ली। [6] बिहार के दूसरे हिस्सों के क्रांतिकारियों ने भी आंदोलन में भाग लिया जिसके बारे में उन्होंने गांधीवादी नजरिए से नहीं सोचा था। बिहार में राष्ट्रवाद का विकास लोकमान्य तिलक की विचारधारा से भी अनुप्राणित था। सन् 1896 ई. में लोकमान्य तिलक ने देश के अकालग्रस्त और बुभूक्षित लोगों को संबोधित करते हुए निर्भयतापूर्वक कहा था "बाजार में लूट–पाट क्यों? कलक्टर के यहाँ जाकर कहो कि वे तुम्हें काम और रोटी दें। यह उनका कर्तव्य है।'' [7] तत्कालीन पत्रों हरिश्चंद्र चंद्रिका, भारत मित्र, हिन्दी प्रदीप, उचित वक्ता आदि ने उनके इस कथन को प्रमुखता से प्रचारित किया। फलस्वरूप कुशासन के घुटन और संत्रास से ऊबी जनता नवजागरण के लिए सम्बद्ध हो सकी। हालाँकि जनता को भड़काने के जुर्म में कई पत्रों को प्रतिबंधित भी किया गया, फिर भी जागरण की नवीन लहर नहीं थमी।

बिहार की राजनैतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धि सनातन है। इसने राजतंत्र, गणतंत्र, जैन धर्म और बौद्ध धर्म को उद्भूत कर समस्त भारतवर्ष को एक झंडे के नीचे एकत्र करने का प्रयास किया है। साथ ही अंगरेजी पराधीनता के विरोध में राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म देने का श्रेय भी इसी प्रदेश को प्राप्त है। मंडन मिश्र, गुरू गोविंद सिंह, कुंवर सिंह, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, बाबा नागार्जुन आदि कि जन्मभूमि बिहार महात्मा गाँधी, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, प्रतापनारायण मिश्र, प्रो. थिकेट, फादर कामिल बुल्के, राहुल सांकृत्यायन, जयप्रकाश नारायण, अज्ञेय आदि की कर्मभूमि रही है। लेकिन राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने वाली पत्रकारिता और प्रेस इस प्रदेश में अन्य प्रांतों की तुलना में लगभग पचहत्तर वर्षों के बाद आया। हाँ, 1853 ई. में प्रकाशित आरा के सैयद मुहम्मद हासिम द्वारा संपादित साप्ताहिक ''नूर उल अनवर'' की सूचना मिलती है। लेकिन यह पूर्णतः व्यावसायिक पत्र था जिसमें विज्ञापनों की भरमार रहती थी। आवश्यक किताबें, पत्रिकाएँ लखनऊ, बनारस, बंबई और कलकत्ता से मँगाई जाती थीं। शिक्षा, प्रेस और पत्रकारिता में पिछड़े इस प्रदेश ने बक्सर की लड़ाई में ब्रिटिश सल्तनत के खिलाफ जो कुछ किया उसका इतिहास लिखा जाना बाकी है।

सरकार ने अप्रैल में अनुमान लगाया कि "यह उत्साह केवल कस्बों तक सीमित है और स्कूली लड़कों में ही दिखाई पड़ रहा है। लेकिन नमक सत्याग्रह ने जो शक्ल अख्तियार की उससे यह बात गलत साबित हो गई। [8] सच्चाई कुछ और ही थी। बाद में चलकर दीप नारायण सिंह ने यह कहा कि नमक आंदोलन में किसानों का योगदान छात्रों से भी ज्यादा रहा। इतना कि जिसकी उन्होंने उम्मीद भी नहीं की थी। [9] दीप नारायण सिंह इस बात के कायल थे कि नमक आंदोलन में लोग स्वेच्छा से

भाग लें। किसी के साथ जबरदस्ती नहीं की जाए। वे स्कूलों पर पिकेट लगाने के भी खिलाफ थे। कहा जाता है कि भागलपुर के टी.एन.जे. कॉलेज पर पिकेट लगाने को असफल करने में भी उनका हाथ था। [10] इस पिकेट को 'कलकत्ता के कुछ लोगों ने आयोजित किया था।' राजेंद्र प्रसाद लोगों से बार–बार अपील कर रहे थे कि "मातृ–भूमि की पुकार सुनकर छात्र आगे बढ़े और आंदोलन में भाग लें।" [11]

नमक सत्याग्रह में भाग लेने के अतिरिक्त वे लोग गोरी कोठी में भी मोर्चे पर सबसे आगे रहे। शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेट लगाने में उन्होंने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। जब कांग्रेस के बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तो बिहार के स्कूली लड़कों ने अनेकों स्कूलों में हड़ताल की घोषणा कर दी। इसके लिए मनभूम कांग्रेस ने छात्रों से विशेष अपील की थी। पुरूलिया में हाई इंगलिश स्कूल पर पिकेट लगाने के अगुआ थे जे.बी. सेन और निबास चंद्र दास गुप्ता। धनबाद के झरिया राज स्कूल में छात्रों की उपस्थिति 420 से घटकर 89 हो गई थी। इस उपमंडल के कटरस में एक राष्ट्रीय स्कूल खोला गया ताकि कटरस हाई इंगलिश स्कूल द्वारा निष्कासित किए गए 25 छात्रों को दाखिला दिया जा सके। [12] रांची में सरकार ने पहले यही समझा था कि छात्र ही मुसीबत की जड़ हैं लेकिन वहीं पर कांग्रेस ने जिला स्कूल में हड़ताल करवा दी। [13] पलामू में गढ़वा हाई इंगलिश स्कूल से 84 छात्रों का नाम काट कर उन्हें निष्कासित कर दिया गया, [14] क्योंकि उन्होंने राजेंद्र प्रसाद की गिरफ्तारी के विरोध में हड़ताल की थी। अगस्त 1930 के समाप्त होते–होते छोटानागपुर में स्कूलों पर पिकेट लगाने का सिलसिला समाप्त हो गया था–जमशेदपुर के स्कूलों को छोड़कर। [15] हड़ताल की वजह से स्कूलों पर पड़ रहे प्रभाव को लेकर टाटा प्रबंधनं बहुत चिंतित था–जिला प्रशासन से भी ज्यादा। क्योंकि टिस्को के मजदूरों पर उसका सीधा प्रभाव पड़ रहा था। [16] गांधी और दूसरे नेताओं के गिरफ्तार हो जाने के बाद मई–अप्रैल में छात्रों ने जमशेदपुर के लोगों (संथालों ने) मन्दर में अरगदा कोयला खदान के पास दो महिलाओं को चुडैल घोषित किए जाने पर उनकी पिटाई की थी। [17]

निष्कर्ष

उल्लेखनिय है कि कांग्रेस के सभी कार्यकर्ता कांग्रेस की ही विचारधारा के नहीं थे। कांग्रेस के दो बड़े नेता पटना के जगत नारायण लाल और पलामू के चंद्रिका प्रसाद हिन्दू महासभा के सक्रिय सदस्य थे। उसी तरह अनेकों क्रांतिकारियों को कांग्रेस का समर्थन मिलता रहता था। वे अपनी गतिविधियों के लिए कांग्रेस और बाद में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को ढाल के रूप में इस्तेमाल करते थे। सच तो यह है कि कांग्रेस में किसान सभाओं और मजदूर यूनियनों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के हर प्रयास का बिहार प्रॉविंशियल कांग्रेस कमेटी ने विरोध किया। वह भी इस बिना पर कि उससे वर्ग संघर्ष को बढ़ावा मिलेगा। अस्पृश्यता विरोधी कार्यक्रमों के चलते कांग्रेस के लिए अछूतों के समर्थन में वृद्धि हुई। लेकिन श्रीकृष्ण सिंहा ने यह स्वीकार किया कि इस क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आन्दोलन और गाँधी की अहिंसा का उद्देश्य अपरिहार्य रूप से आसन्न क्रान्ति को रोकना था। किसान सभा और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की संयुक्त चुनौती का सामना करने में यदि कांग्रेस सफल दिखाई देती है तो यह केवल इसलिए कि कांग्रेस को किसान सभा से राजनीतिक समर्थन मिल रहा था। इसके अतिरिक्त क्रांतिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न चरणों में दी गई कुर्बानियों का कांग्रेस पूरा फायदा उठा सकती थी और उसने उठाया भी। अन्ततः सन् 1946 ई. में ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली की रिपोर्ट पर दिल्ली में कांग्रेस को संविधान बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। उस संविधान निर्मात्री सभा में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा भी थे। 15 अगस्त, 1947ई. को जब भारतवर्ष स्वतंत्र हो गया तो बिहार ने देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अगुआई में पूरे जोश से स्वातंर्त्योत्सव मनाया और 14 अगस्त, 1947 को जयरामदास दौलतराम बिहार के राज्यपाल नियुक्त हुए।

संदर्भ सूची

1. डब्लू.ई.एच. लेकी, हिस्ट्री ऑफ इंग्लैड इन दि एटीन्थ सेन्चुरी, खण्ड 4, 12।
2. मौन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918, 115।
3. ई. का पुराना प्रेस कानून लॉर्ड रिपन के उदार शासन काल में रद्द कर दिया गया था, 1878।
4. रजनी पाम दत, आज का भारत, नई दिल्ली, 1985, 341।
5. फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार पेपर्स, सीरियल नं.7, योगेन्द्र शुक्ल, माई सेल्फ ऐंड द रिवोल्यूशन।
6. विभूति भूषण दासगुप्ता और ज्ञानेन्द्र नाथ विश्वास (युवक संघ के मंत्री) से संबंधित क्रिमिनल इंवेस्टिगेशन डिपार्टमेंट स्पेशल ब्रांच की हिस्ट्री शीट।
7. स्टडीज इन बंगाल रिनेसॉ, 193।
8. पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन 172/1930, भागलपुर, 9 मई 1930 में सत्याग्रह के सिलसिले में एक ग्वाला जमींदार की गिरफ्तारी के बारे में कहा गया है।
9. बिहार एण्ड उड़ीसा इन 1930.31, पटना, 1932, 2।
10. पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन 293/1930, सत्याग्रह आन्दोलन के बारे में 71 वीं रिपोर्ट, 8 जुलाई 1930।
11. उपरोक्त।
12. मिसाल के तौर पर देखें, पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन 150/1930, गोपनीय, एसबी. ऑफिसर की रिपार्ट के अंश, पटना, 2 जुलाई 1930, छात्रों को संबोधित एक हिन्दी पर्चे को बड़े पैमाने पर बांटा गया था। उस पर राजेंद्र प्रसाद ने हस्ताक्षर किए थे।
13. उपरोक्त.26 जुलाई 1930।
14. उपरोक्त.25 अपैल 1930।
15. उपरोक्त.26 जुलाई 1930।
16. पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन 23/1930, फोर्टनाइटली रिपोर्ट अगस्त (2)।
17. उपरोक्त.8 सितंबर 1930।